P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-2* (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

धार : आदिवासी जनजीवन का आईना

तेजेश्वर प्रसाद नोनियाँ
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
काज़ी नज़रुल विश्वविद्यालय,
वर्द्धमान, पश्चिम बंगाल

सारांश

संजीव वर्तमान बोध के उपन्यासकार हैं। अपने उपन्यासों में वर्तमान जनजीवन के प्रत्येक पहलूओं का जीवंत आईना प्रस्तुत किया है। संजीव अपने सभी उपन्यासों में विषय–वस्तु की गम्भीर और सघन खोजबीन के बाद इन जनजातीय समाजों की ओर आकृष्ट होते हैं। अपने जीवन का बड़ा हिस्सा जिस क्षेत्र में उन्होंने बिताया वह भी भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी समाजों का है। उस समाज की जीवन शैली, लोक–व्यवहार और रीति–रिवाजों को सहानुभूति एवं हार्दिक संवेदना से देखते और अंकित करते हैं। राजनीति एवं प्रशासनिक स्तर पर सक्रिय गठजोड़ किस तरह इस समाज के जीवन को भयावह और बोझिल बनाता है, संजीव की केन्द्रीय चिंता यही है। संजीव रचनात्मक स्तर पर उनकी संघर्ष–चेतना को वाणी देते हैं और उनके संघर्ष में वहीं उनके साथ खड़े दिखाई देते है।

आदिवासी चिंतन की दृष्टि से संजीव के उपन्यासों का अध्ययन करने पर हमारे सामने केन्द्रीय रूप में आदिवासियों का पीड़ित व शोषित रूप अंकित होता है।

मुख्य शब्द : आदिवासी का सामाजिक संदर्भ, आदिवासी समाज में शिक्षा का संदर्भ, आदिवासी समाज में नारी की स्थिति, आदिवासी समाज का आर्थिक संदर्भ।

प्रस्तावना

आदिवासी से हमारा अभिप्राय देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासियों से है। आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ है। आदिवासी साहित्य को विभिन्न नामों से पूरी दुनिया में जाना जाता है। यूरोप और अमेरिका में इसे कलर्ड लिटरेचर, स्वे लिटरेचर, अंग्रेजी में ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं। भारत में इसे आदिवासी साहित्य ही कहा जाता है।

संजीव एक गैर आदिवासी लेखक हैं जिन्होंने आदिवासी एवं उनके समाज को अपने साहित्य का विषय बनाया। संजीव ने आदिवासी समाज का संघर्षमय जीवन, दयनीय स्थिति को बड़े ही यथार्थपूर्वक एवं मार्मिक ढंग से दिखाया है।

साहित्यवलोकन

संजीव एक कथाकार के रूप में इस पीढ़ी के प्रतिनिधि लेखक हैं। उपन्यासकार के रूप में उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत ''किशनगढ़ की अहेरी'' (1981) से की थी। फिर ''सर्कस'' (1984) से लेकर 'रह गयी दिशाएँ इसी पार'' (2013) तक उन्होंने बहुत सफलतापूर्वक एक ऐसे लेखक की छवि गढ़ी है जो अपनी अन्तर्वस्तु में सोहराव से बचता है और अपने उपन्यासों के लिए गहन शोध करके अपने लेखन में प्रविष्ट होता है। बिहार, बंगाल के कोलियरी क्षेत्र में संजीव को विशेष कार्य किये हैं। यहीं की कोयला खदानों के मजदूरों को केन्द्र में रखकर एक उपन्यास ''सावधान! नीचे आग है'' (1986) का सृजन किया। इससे ही कथाकार संजीव की छवि संघर्ष करते हुए समुदाय का पक्ष लेने वाले लेखक की बन गई। इसी विषय पर उन्होंने ''धार'' (1990) ''जंगल जहाँ शुरु होता है'' (2000) जैसे उपन्यास लिखे।

अध्ययन का उद्देश्य

हमारे देश में अनेक जनजाति समुदाय है जो आज भी तथाकथित मुख्यधारा एवं उनके द्वारा बनाये गये नियमों–कानूनों से संघर्ष कर रहे हैं जो उनके सामाजिक जीवन के विरुद्ध है। उन्हें अपने हिसाब से जीने की आजादी कोई देना नहीं चाहता। सभी अपनी–अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उन्हें (आदिवासियों) एवं उनके समाज को नुकसान पहुँचा रहे हैं। वे अपने अस्तित्व, सम्मान एवं अस्मिता के लिए संघर्षरत है। उन्हें तथाकथित मुख्यधारा ने उनको सोचने के लिए मजबूर कर दिया है कि वे या तो इस सामाजिक राजनीतिक

व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर बुलंद करे या फिर उस गंदी राजनीति एवं सामाजिक भेद–भाव झेलते रहे। इसी यथार्थ को उजागर करना इस लेख का मूल उद्देश्य है।

आदिवासी का सामाजिक संदर्भ

आदिवासी समाज का संदर्भ बड़ा ही व्यापक है। पहले आये, फिर ब्रिटिश सरकार और अब स्वतंत्र भारत की सरकारें उन्हें वनों से बेदखल करती जा रही है। औद्योगिक विकास के नाम पर वनों को उजाड़ा गया। एवं आदिवासी समाज को अंधकार के गर्त में डाल दिया। 'धार', उपन्यास में संजीव ने आदिवासी समाज की इन्हीं समस्याओं को बाँसगड़ा गाँव के माध्यम से यथार्थ का रूप दिया। बाँसगड़ा गाँव आदिवासियों का है परन्तु गाँव में स्थापित हो रहे कल–कारखानाएँ, कोलियरियाँ आदि उनके समाज के विकास के लिए कुछ नहीं करती, उल्टा उन्हें इन सबके वजह से आर्थिक, सामाजिक, प्राकृतिक आदि विभिन्न प्रकार की समस्याओं से गुजरना पड़ता है। पूँजीपति, ठेकेदार माफिया, पुलिस व्यवस्था के कारण उनका जीवन शोषित, आतंकित, अभावग्रस्त और असुरक्षित मिलता है। मैना जो इस उपन्यास की मुख्य पात्रा है और अविनाश शर्मा शोषण के खिलाफ विद्रोह करते हैं और एक महत्वपूर्ण भूमिका अपनाते हैं। 'धार' उपन्यास में इन्हीं सामाजिक समस्याओं को दर्शाया गया है। इस संदर्भ में कमलेश कुमार लिखते हैं – ''आदिवासियों का समाज वस्तुतः वनों में निवास करने वाले कृषकों का समाज है। कृषि और वन्य सम्पदा के सहारे प्रकृति और संततियों के साहचर्य में सहयोगी बनकर जीवन जीने की कला इन आदिवासियों ने युगों से आत्मसात् कर रखी है।''[1]

आदिवासी समाज में शिक्षा का संदर्भ

भारत को आजादी दिलाने में जितना योगदान हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि सम्प्रदायों ने दिया है, उतना ही योगदान आदिवासी समाज का भी रहा है। सिद्धू, कान्हू, बिरसा जैसे क्रांतिकारी आदिवासी समाज के पुत्र थे। परन्तु आजादी के बाद आदिवासी समाज पर सरकार का ध्यान नहीं गया। आदिवासी समाज में ज्यादातर शिक्षा का अभाव है। इसी अज्ञानता के कारण पूँजीपतियों द्वारा उनका शोषण होता है। मैना इस बात को समझती है। इसलिए वह अपने बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास करती है और कहती है, ''तू सबका भी हालत ऐसा ही होगा। न पढ़ना न लिखना। कल से टैम निकाल के शरमा बाबू के पास नई गए पढ़ने तो खाना बन्द।''[2] आदिवासी समाज भले ही शिक्षित न हो परन्तु वे अपने आने वाले पीढ़ी के शिक्षा के द्वारा शोषण के घुटन से मुक्त कराना चाहती है।

आदिवासी समाज में नारी की स्थिति

सृष्टि की निर्माता नारी है। आदिवासी समाज के परम्परा में आदिवासी नारी की स्थिति तो अच्छी है परन्तु समाज में नारी यहाँ अन्य तरह से शोषित हो रही है। मैना, टोटिया आदि प्रमुख नारी पात्र है। आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपने लोगों से कम तथा प्रशासन व्यवस्था के लोगों से अधिक शोषित होती है। भोली–भाली संथाल महिलाएँ किस प्रकार रेलवे पुलिस के हवस का शिकार होती 'धार' उपन्यास में दिखाया गया है। मगर यह पूछने पर कि रेलवे पुलिस गाँव में क्यों आती है? मैना उत्तर देती है–''कुत्ता काये को आता है? ..... कोई भी जनता ई कुत्ता लोग से बचा नई–कोई नई।''[3] मैना की माँ को डायन साबित कर गाँव से खदेड़ना, पूँजीपतियों की ही साजिश है। शोषण, पेट की मार से बदहाल स्त्री अपने आपको चकला घरों में बेचने को मजबूर है। जेल में जेलर के हवस का शिकार मैना पहले ही बन चुकी थी। उपन्यासकार ने जहाँ समाज में आदिवासी महिलाओं पर संकीर्ण और विभार मानसिकता वाले पुरुष वर्ग को आईना दिखाया वहीं मैना के रूप में एक सशक्त महिला चरित्र का निर्माण भी किया है।

आदिवासी समाज की आर्थिक संदर्भ

'धार' उपन्यास में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक आदिवासी समाज को आर्थिक विषमताओं से संघर्ष करते दिखाया गया है। आदिवासी समाज को रेलवे से आये सामान की सीलतोड़ी करनी पड़ती है। वैगनों के नीचे–नीचे जमीन पर पड़ी चीनी के कुछ दानों को वे चुनते हैं, कूड़ा–कचड़ा चुनते हैं। परन्तु यहाँ भी वे पूँजीपतियों के अधीन है। सीताराम चुने हुए चीनी और कूड़ा का दलाल है। मैना बोलती है – ''धन्न मनाओ रेल कम्पनी का कि बघड़ा–बघड़ा कट जाता है और हमको भोज खाने को मिल जाता है। धन्न मनाऊँ रेलवे पुलिस का, हमको सीलतोड़ी कराता, हमारा बहिन, बेटी, माँ के साथ रंडीबाजी करता कि हमको दू–चार पैसा भेंज जाता, धन्न मनाऊँ सरदार निहाल सिंह का कि हमरा चोरी हजम करके टरक से रेलवई कारखाना का कूड़ा खहियाँ फेंकता कि हम लोहा–पीतल वीन–बान के उनको बेच के पेट चलाता और धन्न मनाऊँ महेन्द्र बाबू की तेजाब का फैक्टरी खोल के हमरा कुछ आदमी की रोजी देता, चाहे कुत्ता बना के ही कायें न दे।''[4] इतनी भयानक एवं दयनीय आर्थिक स्थिति और किसी की क्या हो सकती है। मैना भी इस विषय पर बोलती है – ''कोयला का खजाना पर हम रहता है फिर भी कंगाल?''[5] आदिवासी समाज दिन–प्रतिदिन और गरीब होते जा रहे हैं और पूँजीपति को दिन–दुगनी रात चौगुनी देश की सम्पदा को लूटते जा रहे हैं। प्रो0 सुवास कुमार के शब्दों में – ''आदिवासी कब से गरीब बनता जाता है यहीं बाँसगड़ा गाँव की कहानी है।''[6]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि संजीव आदिवासी जनजीवन के यथार्थ को भलीभाँति जानते हैं यही कारण है कि संजीव अपने उपन्यासों में जीवन वृत्त को बड़ी तल्लीनता के साथ अभिव्यक्त किया है। जिसमें उनका अतीत व वर्तमान नष्टदायक उपस्थिति दर्ज कराता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कमलेश कुमार, आदिवासी विमर्श : अवधारणा और आंदोलन – पहला संस्करण–2014, तेज प्रकाश, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0–15*
2. *संजीव, 'धार' – राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2011, पृ0 सं0–83*
3. *संजीव, 'धार' – राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2011, पृ0 सं0–32*
4. *संजीव, 'धार' – राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2011, पृ0 सं0–54*
5. *संजीव, 'धार' – राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2011, पृ0 सं0–54*
6. *सं0 सुबास कुमार, गिरीश कामिद, कथाकार संजीव, शिल्पायन प्रकाशक, प्रथम संस्करण–2008, पृ0 सं0–292*